मध्य प्रदेश राज्य

बनाम

श्री राम सिंह

1 फरवरी, 2000

[के. टी. थॉमस एवं आर. पी. सेठी, न्यायमूर्तिगण]

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 (पी. सी. ए.), धारा 13(1)(ई), 13(2) सपठित धारा 17 द्वितीय परन्तुक-पुलिस अधीक्षक (एस. पी.) द्वारा धारा 17 के तहत आदेश पारित कर उत्तरदाताओं के विरुद्ध अपराध अंतर्गत धारा 13(1)(ई) पी. सी. ए. की जांच के लिए पुलिस निरीक्षक को अधिकृत करना- उक्त जांच के आधार पर प्रस्तुत आरोपपत्र- उच्च न्यायालय द्वारा उत्तरदाताओं के खिलाफ संस्थित कार्यवाही को इस आधार पर रद्द कर दिया गया कि जांच धारा 17 के संदर्भ में एक अधिकृत अधिकारी द्वारा नहीं की गई- निर्णीत- उच्च न्यायालय द्वारा धारा 17 की व्याख्या और यह निष्कर्ष निकालना कि जांच एक अधिकृत अधिकारी द्वारा नहीं की गई विधिअनुसार नहीं; पुलिस अधीक्षक (एस. पी.) ने निरीक्षक को जांच करने के लिए अधिकृत करने का आदेश पारित करते हुए अपना मस्तिष्क उपयोग किया था- धारा 482, दंड प्रक्रिया संहिता 1974।

प्रत्यर्थी रामसिंह के विरुद्ध, अनुसन्धान एवं छापों के परिणामस्वरूप, एक दाण्डिक प्रकरण अंतर्गत धारा 13(1)(ई) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (पी. सी. ए.) संस्थित किया गया था क्योंकि उसने, उक्त अवधि के दौरान उप-निरीक्षक, उत्पाद शुल्क एवं जिला उत्पाद शुल्क अधिकारी के पद पर रहते हुए, अपनी आय के ज्ञात स्रोतों के अनुपात से अधिक संपत्ति संधारित की थी। प्रत्यर्थी उप-निरीक्षक जे. एस. एवं सहायक अभियंता के. वी., के विरुद्ध भी सामान प्रकृति के आरोपों पर प्रकरण दर्ज किए गए थे। पुलिस अधीक्षक (एस. पी.) द्वारा इन मामलों के संबंध में भी प्रत्यार्थियों के विरुद्ध दर्ज की गई प्राथमिकियों के बारे में ज्ञान होने पर लम्बित अनुसन्धान के दौरान, पी. सी. ए. की धारा 17 के तहत आदेश पारित करते हुए निरीक्षक को मामलों का अनुसंधान करने के लिए अधिकृत किया गया।

उक्त कार्यवाहियों के विरुद्ध प्रत्यार्थियों द्वारा के तहत दायर याचिकाऐ अंतर्गत धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता, 1974 को स्वीकार करते हुए उच्च न्यायलय द्वारा कार्यवाहियों को यह कहते हुए रद्द कर दिया गया कि अनुसन्धान धारा 17 पी. सी. ए. के तहत अधिकृत अधिकारी द्वारा नहीं किया गया। राज्य द्वारा उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील की गई।

उक्त अपीलों को स्वीकार करते हुए उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

1.1 उच्च न्यायालय द्वारा धारा 17 पी. सी. ए. की व्याख्या करते हुए पारित निष्कर्ष कि, अनुसंधान प्राधिकृत अधिकारी द्वारा नहीं किया गया है विधि अनुसार पोषणीय नहीं है।

हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, [1992] 1 पूरक। एस. सी. सी. 335 को समझाया।

एच. एन. रिशबड बनाम दिल्ली राज्य, ए. आई. आर. (1995) एस. सी. 196, संदर्भित।

1.2. ऐसा प्रतीत होता है कि पुलिस अधीक्षक द्वारा मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में अपने मस्तिष्क का प्रयोग करते हुए निरीक्षक द्वारा जाँच को अधिकृत करने का आदेश पारित किया। एफ. आई. आर. के पंजीकरण तथा धारा 17 के दूसरे परंतुक के अंतर्गत प्राधिकृत करने का आदेश पारित करने के मध्य की अवधि भी पुलिस अधीक्षक द्वारा मस्तिष्क के प्रयोग के साथ-साथ ऐसी परिस्थितियों को दर्शाती है जिनपर विचार करते हुए अनुसन्धान अधिकृत किया गया था।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकारिता: आपराधिक अपील सं 114/2000 व अन्य।

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के दाण्डिक विविध याचिका सं. 2481/ 1996 में निर्णय और आदेश दिनांकित 06.01.97 से।

उपस्थित के. एन. शुक्ला, यू. आर. ललित, उमा नाथ सिंह, साकेश कुमार, एस. एस. खानदुजा, यश पाल ढींगरा, बी. के. सतीजा, एस. के. गंभीर, विवेक गंभीर, सपन बी. मुतू, अशोक कुमार सिंह, सुश्री सुशीला शुक्ला, सुश्री शिप्रा जैन और एल. एस.चौहान पक्षकारों की ओर से।

न्यायालय का निर्णय पारित करने वाले

न्यायमूर्ति सेठी द्वारा सुना गया, अनुमति प्रदान की गयी।

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के फैसले हरियाणा राज्य व अन्य बनाम भजन लाल व अन्य, [1992] 1 पूरक एस. सी. सी. 335 का अवलंब लेते हुए तथा धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उपलब्ध शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपीलाधीन फैसले द्वारा प्रत्यार्थियों के खिलाफ धारा 13(1)(ई) एवं धारा 13(2) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) के अंतर्गत संस्थित, संचालित एवं संपन्न अनुसंधान एवं अनुषांगिक कार्यवाहियों को रद्द कर दिया। अदालत ने पाया कि धारा 13 (1)(ई) अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध के लिए की जांच अधिनियम की धारा 17 के अनुसार प्राधिकृत अधिकारी द्वारा नहीं की गई थी। न्यायालय द्वारा गौर करने के पश्चात यह पाया गयाः

" प्रत्येक स्तिथि में यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि दाण्डिक अपराधों की जांच ऐसी किसी भी आपत्तिजनक लक्षण या दुर्बलता से मुक्त होना चाहिए जो अभियुक्त को विधि अनुसार ऐसी शिकायत करने का आधार उपलब्ध करावे कि जाँच अनुचित रीति अथवा परोक्ष अभिप्राय से की गयी है। अभियुक्त का विचारण ऐसे व्यक्ति के अनुसंधान के आधार पर जिसके स्वयं के पास जांच करने का कानूनी अधिकार नहीं था स्वीकार योग्य नहीं है।"

कानूनी विवाद की विवेचना हेतु, कुछ ऐसे तथ्यों का उल्लेख करना उचित है जिनके बारे में इन अपीलों में इस स्तर पर कोई विवाद प्रतीत नहीं होता है।

प्रत्यर्थी राम सिंह के बारे में, जैसा की उल्लेखित है, दिनांक 4.7.1992 को एक गुप्त जानकारी प्राप्त की गई थी कि जब वह उप निरीक्षक, उत्पाद शुल्क और जिला उत्पाद शुल्क अधिकारी के पद पर थे, तब उन्होंने अपनी आय के ज्ञात स्रोतों से अधिक अवैध संपत्तियां अर्जित की थी। सत्यापन करने पर यह पाया गया कि उसने जांच अवधि दिनांक 1.1.1982 से 4.9.1992 के मध्य, अपने आय के ज्ञात स्रोतों से कथित रूप से अत्यधिक चल-अचल संपत्तियां अर्जित की थीं। परिणामस्वरूप अपराध अंतर्गत धारा 13 (1) (ई) और 13 (2) के तहत उसके खिलाफ

प्रकरण सं. 103/92 की दर्ज किया गया था। तदुपरांत दिनांक 4.8.1992 को श्री बी. एन. भाटिया, डिप्टी पुलिस अधीक्षक, एस. पी. ई., लोकयुक्त कार्यालय, ग्वालियर द्वारा मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, ग्वालियर से तलाशी वारंट प्राप्त करने के पश्चात छापा मारा गया तथा उसके पुत्र प्रताप सिंह, अधिवक्ता के कब्जे से प्राप्त चल सम्पत्तियो का जब्ती ज्ञापन बनाया गया। तत्पश्चात दिनांक 7.8.1992 को तलाशी वारंट दिनांक 3.8.1992 के तहत श्री सी. पी. एस. चतुर्वेदी, उप अधीक्षक पुलिस, लोकयुक्त कार्यालय, ग्वालियर द्वारा एक अन्य छापा उक्त प्रत्यर्थी को विकास नगर, बैतूल में आवंटित सरकारी क्वार्टर में डाला गया। छापेमारी में भी कुछ दस्तावेज, एक ट्रांजिस्टर, एक पिस्तौल और डायरियां बरामद की गईं। प्रत्यर्थी श्री राम सिंह द्वारा मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर के समक्ष अग्रिम जमानत हेतु याचिका संख्या 143/1993 दायर की गयी जो स्वीकार हुई। अतिरिक्त उत्पाद शुल्क आयुक्त मध्य प्रदेश, ग्वालियर ने पत्र दिनांकित 14.12.1993 के माध्यम से प्रत्यर्थी को निर्देशित किया कि वह निर्धारित प्रपत्र संख्या 1, 2 और 3 के अनुरूप लोकयुक्त ग्वालियर को अपना बयान प्रस्तुत करे। उक्त बयान श्री पी. एस. सिसोदिया, पुलिस उपाधीक्षक, लोकयुक्त अधिकारी, मोती महल, ग्वालियर को दिनांक 16.5.1994 को प्रस्तुत किये गए। बयानों में यह उल्लेख किया गया था कि सभी स्रोतों से प्रत्यर्थी की कुल आय रु 4,19,000 और खर्च रु. 2,58,700 था जो रु 1,60,300 की बचत को दर्शाता है। उन्होंने घोषणा की कि उनकी संपत्ति

उनके आय के ज्ञात स्रोतों से अधिक नहीं थी। प्रत्यर्थी द्वारा आगे की जानकारी प्रस्तुत किए जाने के बाद, 5.6.1995 को उसके बैंक खाते के संबंध में आगे की जांच की गई। मई, 1996 में प्रत्यर्थी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत याचिका संख्या 2481/96 दायर कर अपराध सं. 143/93 और उसके खिलाफ दायर आरोप पत्र से संबंधित कार्यवाही को रद्द करने का अनुरोध किया। उन्होंने तर्क दिया कि विशेष पुलिस द्वारा की गई सम्पूर्ण तलाशी और जब्ती अवैध, दुर्भावनापूर्ण और बिना किसी आधार के की गयी थी। यह आगे तर्क दिया गया कि तलाशी बिना अधिकार क्षेत्र के आयोजित की गई थी और इसमें भी अधिनियम की धारा 17 के प्रावधानों का उल्लंघन किया गया था। उन्होंने आरोप लगाया कि जांच दुर्भावनापूर्ण थी क्योंकि उनके परिवार के सदस्यों के खाते को अवैध रूप से रोक दिया गया था।

राज्य ने उच्च न्यायालय में दायर अपने जवाब में आरोप लगाया कि इसके बाद जाँच में यह पता चला था कि जाँच अवधि के मध्य, प्रत्यर्थी की कुल आय सभी ज्ञात स्रोतों से रु 3,13,470.68 थी और उनके खर्च रु 16,25,723.49 थे। इस प्रकार असमान राशि रु. 13,12,252.81 गणना में पायी गयी जो उनकी आय के ज्ञात स्रोत से 350 गुना अधिक थी। जाँच के बाद स्वीकृति प्राप्त कर आरोप पत्र दायर किया गया। प्रारंभिक जाँच श्री बी. एन. भाटिया, पुलिस उप अधीक्षक, विशेष पुलिस प्रतिष्ठान,ग्वालियर और उसके बाद श्री डी. एस. राणा, इंस्पेक्टर एस. पी. ई., ग्वालियर द्वारा

की गयी जिन्हे पुलिस अधीक्षक एस. पी. ई. ग्वालियर द्वारा आदेश सं. एसपीई/2766/94 दिनांक 12.12.1994 द्वारा विधिवत अधिकृत किया गया था। पुलिस अधीक्षक का आदेश अधिनियम की धारा 17 के पूर्णतः अंतर्गत होने का दावा किया गया था।

प्रत्यर्थी जगदीश प्रसाद को उप-निरीक्षक के रूप में नियुक्त किया गया और वह A.D.E.O का पद भी संभाल रहा था। दिनांक 16.11.1984 को उसके विरुद्ध प्रारंभिक जांच सं. 120/84 दर्ज की गयी थी। दिनांक 7.5.1985 को श्री तारा चंद निवासी दहीमंडी, ग्वालियर की शिकायत पर एक अन्य जांच संख्या 5/85 प्रत्यर्थी के विरुद्ध दर्ज की गई और अनुसन्धान किया गया। प्रारंभिक पूछताछ सं. 5/85 के आधार पर अधिनियम की धारा 13(1)(ई) और 13(2) के तहत प्रकरण संख्या 132/92 दिनांक 7.10.1992 को उसके खिलाफ दर्ज किया गया था। जाँच के बाद पता चला कि 1.2.1964 से 31.1.1984 तक की जाँच अवधि के दौरान प्रत्यर्थी की आय के ज्ञात स्त्रोतों से आय रु 1,12,380.54 और व्यय रु 2,14,608.84 था। इस तरह उनके पास आय से अधिक रूपये 1,02,228.30 की संपत्ति पाई गई। तत्पश्चात अभियोजन स्वीकृति प्राप्त करने के बाद दिनांक 5.8.1986 को न्यायालय में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। तत्पश्चात प्रत्यर्थी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय में, भजन लाल के मामले (उपरोक्त) के फैसले के आलोक में उनके खिलाफ जांच और उसपर सम्पादित कार्यवाही को रद्द

करने हेतु याचिका प्रस्तुत की गयी जो स्वीकार करते हुए आलोच्य आदेश द्वारा समस्त कार्यवाही रद्द की गयी।

प्रत्यर्थी केदारीलाल वैश्य सरकारी सेवा में उप-अभियंता के रूप में 15.7.1978 को नियुक्त हुए थे, उन्हें 8.3.1990 को सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नत किया गया। पुलिस अधीक्षक, एस. पी. ई. क्षेत्रीय लोकयुक्त कार्यालय, ग्वालियर के कार्यालय में एक सूचना प्राप्त हुई कि उपरोक्त प्रत्यर्थी के पास अपनी आय के ज्ञात स्रोतों के अनुपात में बहुत अधिक अचल संपत्तियाँ थीं। सत्यापन के बाद अपराध संख्या 17/94 अंतर्गत अधिनियम की धारा 13(1) (e) और 13(1)(d) सपठित धारा 13(2) का मामला दर्ज किया गया था। इंस्पेक्टर राम लखन सिंह भदोरिया को ग्वालियर के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत से तलाशी वारंट प्राप्त हुआ था। पुलिस अधीक्षक एस. पी. ई. क्षेत्रीय लोकयुक्त कार्यालय, ग्वालियर ने श्री राम लखन सिंह भदोरिया द्वारा मामले की जांच को अधिकृत करते हुए आदेश संख्या 454 दिनांक 8.2.1994 जारी किया। उस पर जांच में यह पाया गया कि जाँच अवधि के दौरान 7.7.1978 से 2.9.1994 तक प्रत्यर्थी ने कुल रु 3,86,966.75 आय और रु 7,95,243.98 का व्यय किया। इस तरह उसके पास रुपये 4,08,277.23 की संपत्ति उसकी आय के ज्ञात स्रोतों के अनुपात में अधिक पाई गई जो अधिनियम की धारा 13(1)(ई) और 13(2) के तहत दंडनीय है। अभियोजन के लिए मंजूरी 26 अक्टूबर को प्राप्त की गई थी जिसके बाद प्रत्यर्थी के

खिलाफ उपर-न्यायाधीश शिवपुरी के न्यायालय में आरोप पत्र दायर किया गया था जो विशेष सत्र प्रकरण सं. 4/1996 के तौर पर दर्ज किया गया था। जांच से संतुष्ट नहीं होने पर प्रत्यर्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत याचिका दायर करते हुए प्रकरण संख्या 17/94 की जांच और परिणामी कार्यवाही को रद्द करने का अनुरोध किया गया था, जिसे इन अपीलों में आक्षेपित आदेश के माध्यम से अनुमति दी गई थी।

सभ्य समाज में भ्रष्टाचार कैंसर जैसी बीमारी है, जिसका यदि समय पर पता नहीं चले तो यह निश्चित रूप से देश की व्यवस्था को दूषित कर देगा जिसके विनाशकारी परिणाम होंगे। यह एक प्लेग है जो न केवल भ्रामक है बल्कि नियंत्रित नहीं किया गया तो जंगल में आग की तरह फैलता है। इसके वायरस की तुलना एच. आई. वी. से की जाती है जिससे एड्स होता है, जो लाइलाज है। इसे शाही चोरी भी कहा जाता है। इस तरह की खतरनाक संचारी बीमारी के संपर्क में आने वाली सामाजिक-राजनीतिक प्रणाली के अपने ही वजन से ढहने की संभावना है। भ्रष्टाचार लोकतंत्र और सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ है, जो न केवल जनविरोधी है, बल्कि उनके खिलाफ है। यह अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है और सांस्कृतिक विरासत को भी नष्ट कर देता है। जब तक कि इसका प्रारम्भ में ही सर्वनाश नहीं कर दिया तत्पचातजाता, यह अन्यथा स्वस्थ, समृद्ध, प्रभावी और जीवंत समाज की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था में उथल-पुथल मचाने की संभावना रखता है।

प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध की स्थितियों के पश्चात भ्रष्टाचार का खतरा काफी बढ़ गया है। भ्रष्टाचार, शुरुआती चरणों में नौकरशाही तक सीमित माना जाता था जिनके पास विभिन्न प्रकार के राजकीय अनुबंध, लाइसेंस और अनुदान को प्रभावित करने के अवसर उपलब्ध थे। युद्ध के बाद भी भ्रष्टाचार के अवसर जारी रहे क्योंकि बड़ी मात्रा में सरकारी अधिशेष भंडारों का निस्तारण लोक सेवको द्वारा किये जाने की आवश्यकता थी। युद्ध के बाद विभिन्न वस्तुओं की कमी के कारण नियंत्रण लागू करना आवश्यक हो गया और पुनर्निर्माण की व्यापक योजनाएं जिनमें भारी मात्रा में धन जो लोक सेवकों के नियंत्रण में होता है उन्हें इस चमकती धन और संपत्ति की दुनिया की ओर लुभाने के लिए पर्याप्त था। भ्रष्टाचार की रोकथाम और उससे जुड़े मामलों से संबंधित समस्त कानूनों को समेकित और संशोधित करने हेतु भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 अधिनियमित किया गया था जिसमें समय-समय पर संशोधन किया गया। 1947 के अधिनियम के क्रियान्वयन एवं उपयोग के दौरान जो आकस्मिकताएँ और कमियाँ देखने में आयी उनसे निराकरण के उद्देश्य से वर्ष 1988 में इस विषय पर एक नयी विधि अधिनियम संख्या 49 बनायी गयी।भ्रष्टाचार निवारण का यह कानून अनिवार्य रूप से अधिनियम में विशेष रूप से परिभाषित लोक सेवकों पर लागु होता था न की सामान्य बोलचाल में अभिप्रेत लोकसेवकों पर।

इस अधिनियम का उद्देश्य लोक सेवकों के मध्य रिश्वत और भ्रष्टाचार की रोकथाम के लिए प्रभावी प्रावधान करना था। यह एक सामाजिक कानून है जिसका उद्देश्य लोक सेवकों की अवैध गतिविधियों पर अंकुश लगाना है और इसके उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए इसे उदारता से समझा जान चाहिए। आर. एस. नायक बनाम ए. आर. अंतुले, [1984] 2 एस. सी. सी. 183 में इस न्यायालय के अधिनियम के अंतर्निहित उद्देश्य के सम्बन्ध में कहा है कि:

> **" 1947 का अधिनियम, जैसा कि इसके लंबे शीर्षक से पता चलता है, रिश्वत और भ्रष्टाचार की रोकथाम के लिए अधिक प्रभावी प्रावधान करने के लिए अधिनियमित किया गया था। निर्विवाद रूप से, इसलिए, अधिनियम के प्रावधानों का न्यायालय के द्वारा ऐसा निर्वाचन होना चाहिए जो अधिनियम के अंतर्निहित उद्देश्य और प्रयोजन को आगे बढ़ाए तथा किसी भी प्रकार से विफल नहीं होगे देवे। यदि क़ानूनी प्रावधानों में प्रयुक्त शब्द के अर्थ स्पष्ट और असंदिग्ध हैं, तो प्रावधानों में उपयोग किए गए शब्दों के स्वाभाविक अर्थ को प्रभावी बनाना न्यायालय का सबसे बड़ा कर्तव्य है। निर्वचन का प्रश्न केवल अस्पष्टता की स्थिति अथवा कानून में उपयोग किए गए शब्द के सरल अर्थ द्वारा स्वयं को पराजित करने की स्तिथि में ही उत्पन्न**

होता है। न्यायालय को अस्पष्टता निराकरण का अधिकार समग्र कानून को दृष्टिगत रखते हुए अधिनियम के लागु किये जाते समय विधायिका के आशय में हुई रिष्टि को सुधारने के लिए होता है। निर्वचन का उपरोक्त नियम इतना सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया है कि इसका पूर्ववर्ती न्यायिक दृष्टांतों द्वारा समर्थित होना भी आवश्यकता नहीं है। निर्वचन के इस नियम को अपनाते हुए,यदि जब भी अस्पष्टता पर निर्वचन का कोई प्रश्न उत्पन्न होता है अथवा जहाँ किसी प्रावधान के बारे में दो मत संभव हैं, न्यायालय का कर्तव्य होगा कि वह उस निर्वचन को अपनाये जो अधिनियम के अन्तर्निहित उद्देश्य, अर्थात्, रिश्वत और भ्रष्टाचार की रोकथाम हेतु प्रभावी प्रावधान को आगे बढ़ाये, ना कि उसे पराजित करे।"

अधिनियम द्वारा साधे जाने वाले उद्देश्य को प्रक्रियात्मक देरी और कानूनी बारीकियों द्वारा विफल करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों और इसके तहत मामलों को तय करते समय समग्र लोक हित और सामाजिक उद्देश्य को ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

इन अपीलों पर निर्णय के प्रयोजन हेतु अधिनियम की धारा 13 एवं धारा 17 का सन्दर्भ आवश्यक है। धारा 13 लोक सेवकों के आपराधिक अवचार से संबंधित है और आपराधिक अवचार के अपराध के लिए सजा निर्धारित करती है। परिभाषा के अनुसार लोक सेवक के विरुद्ध आपराधिक अवचार का अपराध निम्नानुसार गठित होता है।

> **"(क) यदि वह विधिक पारिश्रमिक के अतिरिक्त कोई असम्यक लाभ धारा 7 में उल्लिखित संतुष्टि या पुरस्कार के रूप में, अपने लिए, किसी अन्य व्यक्ति से, आदतन स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने के लिए सहमत होता है या प्राप्त करने का प्रयास करता है; या**
>
> **(ख) यदि वह अपने लिए अथवा किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वास्तु किसी प्रतिफल के बिना अथवा किसी ऐसे प्रतिफल के लिए जिसे वह जानता हो कि अपर्याप्त है, किसी व्यक्ति से यह जानते हुए कि ऐसे लोक सेवक द्वारा की गई या की जाने वाली किसी क्रिया या कारवार से वह व्यक्ति संपृक्त हो चुका है या उसका संपृक्त होना संभाव्य है या स्वयं उसके या किसी ऐसे लोक सेवक जिसका वह अधीनस्थ है पदीय कृत्यों या लोक कर्तव्य से वह व्यक्ति आशक्त है या किसी ऐसे व्यक्ति से यह जानते**

हुए कि वह इस प्रकार संपृक्त व्यक्ति से हितबद्ध है या रिश्तेदारी रखता है, आदतन स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने के लिए सहमत होता है या प्राप्त करने का प्रयास करता है; या

(ग) यदि वह लोक सेवक के रूप में अपने को सौंपी गई किसी संपत्ति या अपने नियंत्रणाधीन किसी संपत्ति का अपने उपयोग के लिए बेइमानी से या कपटपूर्वक दुर्विनियोग करता है या उसे अन्यथा संपरिवर्तित कर लेता है या किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने देता है; या

(घ) यदि वह-

(i) भ्रष्ट या अवैध माध्यमों से, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति को कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है; या

(ii) लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करके, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए धन लाभ की कोई मूल्यवान वस्तु प्राप्त करता है; या

(iii) लोक सेवक के रूप में पद धारण करते समय, किसी भी व्यक्ति से बिना सार्वजनिक हित निहित रहते हुए कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है; या

(ङ) यदि वह या उसकी ओर से कोई अन्य व्यक्ति अपनी पदावधि के दौरान किसी समय अपनी आय के ज्ञात स्त्रोतों से अननुपातिक घनीय संसाधन या संपत्ति उसके कब्जे में है या रही है, जिसके लिए लोक सेवक समाधानप्रद रूप से हिसाब नहीं दे सकता है।

स्पष्टीकरण-इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "आय के ज्ञात स्रोतों" का अर्थ है किसी वैध स्रोत से प्राप्त आय जिसकी प्राप्ति की सूचना तत्समय प्रवृत्त किसी भी कानून, नियमों या आदेशों के प्रावधानों के अनुसार, जो लागु है के अनुरूप प्रेषित कर दी गयी हो।

(2) कोई लोक सेवक जो आपराधिक अवचार करेगा ऐसे अवधि के करावास से दण्डित किया जायेगा जो एक वर्ष से कम की नही होगी किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी दंडनीय किया जायेगा।"

अधिनियम की धारा 17 मामलों की जांच से संबंधित है और निम्नलिखित प्रावधान करती हैः

"धारा 17 भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम- अन्वेषण के लिए प्राधिकृत व्यक्ति.-

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी निम्न पंक्ति के नीचे का कोई भी पुलिस अधिकारी-

(क) दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना की दशा में पुलिस निरीक्षक।

(ख) बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और अहमदाबाद तथा किसी अन्य मेट्रोपोलिटन क्षेत्र में, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 8 की उपधारा (1) द्वारा अधिसूचना के क्षेत्र में, सहायक पुलिस आयुक्त।

(ग) अन्यत्र उप-पुलिस अधीक्षक या इसके समकक्ष पद का अधिकारी, इस अधिनियम के अन्तर्गत दंडनीय किसी अपराध का अन्वेषण यथास्थिति मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, या प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना अथवा उसके लिए कोई गिरफ्तारी वारंट के बिना नहीं करेगा:

परन्तु यदि पुलिस निरीक्षक की पंक्ति से अनिम्न कोई पुलिस अधिकारी साधारण या विशेष आदेश द्वारा इस निमित्त राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत हो तो वह भी ऐसे किसी अपराध का अन्वेषण, यथास्थिति मेट्रोपोलिटन

मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना अथवा उसके लिए गिरफ्तारी वारंट के बिना कर सकेगा।

परन्तु आगे यह भी कि धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (ख) में निर्दिष्ट किसी अपराध का अन्वेषण ऐसे पुलिस अधिकारी के आदेश के बिना नहीं किया जाएगा जो पुलिस अधीक्षक की पंक्ति से अनिम्न हो।"

इस धारा में यह प्रावधान है कि दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान के मामले में निरीक्षक के पद से नीचे का कोई भी पुलिस अधिकारी; बॉम्बे, कलकत्ता, मद्रास और अहमदाबाद के महानगरीय क्षेत्रों और किसी अन्य महानगरीय क्षेत्र के रूप में अधिसूचित क्षेत्र में पुलिस का सहायक आयुक्त और उप पुलिस आयुक्त, पुलिस अधीक्षक या समकक्ष रैंक का पुलिस अधिकारी, मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, के पूर्व आदेश के बिना अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध की जांच या बिना वारंट के उसकी कोई गिरफ्तारी नहीं करेगा। पहले परंतुक के अनुसार यदि पुलिस निरीक्षक के पद से निम्न पंक्ति का कोई पुलिस अधिकारी सरकार द्वारा इस संबंध में सामान्य या विशेष आदेश द्वारा अधिकृत किया जाता है वह महानगर मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, के आदेश के बिना भी ऐसे अपराधों की जांच कर सकता है, या बिना वारंट के गिरफ्तारी कर सकता है। धारा के

इस भाग के अनुपालन के संबंध में वर्तमान अपीलों में कोई विवाद नहीं है। लेकिन दूसरे परंतुक में यह प्रावधान है कि जहां धारा 13(1) के उपखंड (ई) में निर्दिष्ट अपराध की जाँच की जानी है, ऐसी जाँच किसी पुलिस अधीक्षक के पद से निम्न पंक्ति के पुलिस अधिकारी के आदेश के बिना नहीं की जाएगी। इस परंतुक की व्याख्या वर्तमान विवाद में शामिल है।

भजन लाल (उपरोक्त) के मामले में की गई जांच और उसके बाद की कार्यवाही को इसी आधार पर रद्द कर दिया गया है। उस मामले के तथ्यानुसार, धरम पाल नामक व्यक्ति ने हरियाणा के पूर्व मुख्यमंत्री चौधरी भजन लाल के खिलाफ एक शिकायत प्रस्तुत करते हुए उनके खिलाफ कुछ गंभीर आरोप लगाए जो प्रथम दृष्टया अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध कारित होना दर्शाते थे। शिकायत मुख्यमंत्री सचिवालय में 12.1.1987 को प्रस्तुत की गई जब श्री भजनलाल का मुख्यमंत्री नहीं रहे। मुख्यमंत्री सचिवालय में विशेष कार्य अधिकारी द्वारा शिकायत पर टिप्पणी अंकित की गयी कि “सी. एम. ने देखा। उचित कार्रवाई के लिए" और उसको पुलिस महानिदेशक को अग्रेषित किया गया, जिन्होंने उसी दिन अभिसमर्थन करते हुए टिप्पणी की कि "कृपया इस पर गौर करें; आवश्यक कार्रवाई करें और रिपोर्ट करें" और इसे पुलिस अधीक्षक, हिसार को अग्रेषित किया। ओ. एस. डी. और डी. जी. पी. के उपरोक्त समर्थन के साथ शिकायत को एस. पी. के समक्ष दिनांक 21.11.1987 को रखा गया था जिसपर उसी दिवस को एस. पी. द्वारा टिप्पणी की गयी कि "कृपया

मामला दर्ज करें और जांच करें"। शिकायत में लगाए गए आरोपों के आधार पर थानाधिकारी पुलिस थाना द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 161 व 165 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5 (2) के तहत मामला दर्ज किया। प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रति मजिस्ट्रेट और अन्य संबंधित अधिकारियों को अग्रेषित करने के बाद एस. एच. ओ. ने जाँच शुरू की और अपने कर्मचारियों के साथ मौके पर आगे बढ़े। इस स्तर पर श्री भजन लाल ने प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने और पुलिस को जांच को आगे बढ़ने से रोकने के निर्देश जारी करने की मांग करते हुए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत रिट याचिका संख्या 9172/87 दायर की। उच्च न्यायालय ने माना कि शिकायत में लगाए गए आरोप एक संज्ञेय अपराध गठित करने हेतु कानूनी जांच शुरू करने हेतु पर्याप्त नहीं हैं और याचिका में अनुरोध के अनुसार राहत प्रदान की गई। उपरोक्त निर्णय से व्यथित हरियाणा राज्य ने इस न्यायालय में एक अपील दायर की जिसका निपटारा निम्नानुसार किया गया:

> "हम उच्च न्यायलय द्वारा पारित प्रथम सुचना रिपोर्ट को रद्द करने वाले आदेश को विधि एवं तथ्यों के अनुसार पोषणीय नहीं होने के पूर्वोक्त आधारों पर अपास्त करते हैं; लेकिन, हालांकि, हम संस्थित कार्यवाही के साथ-साथ पूरी जाँच, यदि कोई अब तक हो, को निर्णय में उल्लेखित आधार कि, तीसरे अपीलार्थी (एस. एच. ओ.) को धारा

5ए(1) भृष्टाचार नियंत्रण अधिनियम के अंतर्गत वैध विधिक प्राधिकार प्राप्त नहीं था के आधार पर रद्द करते है। साथ ही हम उच्च न्यायालय द्वारा वादखर्च दिलाये जाने के आदेश को अपास्त करते हुए निर्देशित करते है कि उक्त वादखर्चे प्रथम प्रत्यर्थी (चौधरी भजन लाल) को द्वितीय प्रत्यर्थी (धरम पाल) द्वारा संदत्त किये जावे।

परिणामस्वरूप, अपील का तदनुसार निस्तारण किया जाता है लेकिन साथ ही राज्य सरकार उचित होने पर वह सक्षम पुलिस अधिकारी जो की धारा 5ए(1) अधिनियम के अंतर्गत वैध विधिक प्राधिकार, ऊपर बताये अनुसार सशक्त हो, के द्वारा नए सिरे से जांच का निर्देश देने को स्वतंत्र होगी। वाद खर्च के बारे में कोई आदेश नहीं। "

उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इस न्यायालय द्वारा स्वयं से एक प्रश्न निम्नलिखित शब्दों में पुछा गया:

" अब जो विचार के लिए बचा है वह यह है कि क्या धारा 5 की उप-धारा (1) के खंड (ई) के तहत आने वाले अपराध की जाँच की अनुमति तीसरे अपीलार्थी को देने वाला एस. पी. का आदेश वैध है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है की एस. पी. (दूसरे अपीलार्थी) ने एक शब्द 'जांच' के द्वारा

दिनांक 21.11.1987 को निर्देश दिया है। प्रश्न यह है कि क्या एक शब्द 'जांच' का निर्देश धारा 5ए (1) का दूसरा परंतुक के अंतर्गत 'आदेश' अर्थ रखता है।

न्यायालय ने तथ्यों पर पाया कि चूंकि एस. पी. द्वारा एस. एच. ओ. को जाँच करने का निर्देश का कोई कारण नहीं दिया गया था, ऐसे में उक्त आदेश विधि विपरीत था। इसलिए एस. एच. ओ. को अधिनियम 1947 की धारा 5ए (1) द्वितीय परन्तुक के तहत, अधिनियम की धारा 5(1) का खंड (ई) के अपराधों की जांच के लिए प्राधिकार नहीं मिला। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि (1) जैसा की आधार उल्लेखित करने के आज्ञापक विधिक प्रावधान की अनुपलना नहीं की गयी थी; (2) क्योंकि अभियोजन संतोषजनक रूप से उन परिस्थितियों की व्याख्या करने में असफल है जिन्होंने एस. पी. को मामले की जांच करने के लिए एस. एच. ओ. को निर्देश देने का आदेश पारित करने के लिए प्रेरित किया, (3) जैसा कि उक्त निर्देश स्पष्ट रूप से इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की परवाह किए बिना यंत्रवत और बहुत ही आकस्मिक तरीके से दिया गया प्रतीत होता है और (4) क्योंकि एस. एच. ओ. को न तो मजिस्ट्रेट से आई. पी. सी. की धारा 161 और

165 के तहत अपराध मामले की जांच करने का कोई आदेश मिला था और न ही एस. पी. द्वारा विधिसम्मत तरीके से भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (1) (ई) के तहत अपराधों हेतु कोई आदेश दिया गया था ऐसे में, केवल "जांच" के निर्देश का आदेश कानूनी दुर्बलता से ग्रस्त था। अदालत ने पाया कि एसपी के निर्देश और उसके बाद की जांच को रद्द करने के बावजूद भी यदि राज्य ऐसा उचित समझता है तो, हरियाणा राज्य को, किसी भी तरह से, मामले को आगे बढ़ाने और एफ. आई. आर. के अनुसरण में नए सिरे से जांच का निर्देश देने से रोका नहीं जा सकता है।"

इस स्तर पर यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने *एच. एन. रिशबड व अन्य बनाम दिल्ली राज्य*, ए. आई. आर. (1955) एस. सी. 196 मामले में अभिनिर्धारित किया था कि जांच में कोई दोष या अवैधता, कितनी भी गंभीर है, इसका प्रसंज्ञान या विचारण से संबंधित क्षमता या प्रक्रिया पर कोई सीधा दुष्प्रभाव नहीं है। दंड प्रक्रिया संहिता(1898) की धारा 190,193,195 से 199 और 537 के प्रावधानों का सन्दर्भ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अपराधों के प्रसंग में रखते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

“जांच में कोई दोष या अवैधता, कितनी भी गंभीर है, इसका प्रसंज्ञान या विचारण से संबंधित क्षमता या प्रक्रिया पर कोई सीधा दुष्प्रभाव नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जाँच के परिणामस्वरूप धारा 190 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट वह सामग्री है जिसके आधार पर प्रसंज्ञान लिया जाता है। परन्तु यह संधारित नहीं किया जा सकता की न्यायालय की प्रसंज्ञान लेने की क्षेत्राधिकारिता वैध पुलिस रिपोर्ट पर ही आधारित हो। धारा 190 दंड प्रक्रिया संहिता “ कार्यवाही संस्थित किये जाने के लिए आवश्यक शर्तों” शीर्षक वाली धाराओं के समूह में से एक धारा ही है। इस धारा की भाषा इसी समूह की अन्य धाराओं अर्थात्, धारा 193 और 195 से 199 तक की भाषा के स्पष्ट रूप से विपरीत है।

ये पश्चात्वर्ती धाराएँ न्यायालय की क्षमता को विनियमित करती हैं और कुछ मामलों में अनुपालना के आधार पर इसके अधिकार क्षेत्र को सीमित करती है। लेकिन धारा 190 ऐसा नहीं करती है। हालांकि इसमें कोई संदेह नहीं है, एक मायने में, धारा 190 (1) के खंड (ए), (बी) और (सी) प्रसंज्ञान लेने के लिए,अपेक्षित शर्तें हैं परन्तु यह कहना संभव नहीं है कि अमान्य पुलिस रिपोर्ट के आधार पर लिया

प्रसंज्ञान ही अवैध अथवा अमान्य हो।" ऐसी अमान्य रिपोर्ट अभी भी धारा 190 (1) खंड (ए) या (बी) के तहत आ सकती है।(वह चाहे किसी भी खंड में आये इसके लिए इस स्तर पर विचार आवश्यक नहीं) और किसी भी मामले में इस तरह से लिया गया प्रसंज्ञान केवल विचारण के पूर्ववर्ती कार्यवाही में त्रुटि ही है। ऐसी परिस्थिति में धारा 537, दंड प्रक्रिया संहिता जो निम्नानुसार है लागू होती है :

"इसके पूर्व अन्तर्विष्ट उपबंधों के अधीन यह कि सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा पारित कोई निष्कर्ष, दण्डादेश या आदेश विचारण के पूर्व या दौरान, परिवाद, समन, वारण्ट, उद्घोषणा, आदेश, निर्णय या अन्य कार्यवाही में हुई या इस संहिता के अधीन किसी जांच या अन्य कार्यवाही में हुई किसी गलती, लोप या अनियमितता या अभियोजन के लिए मंजूरी में हुई किसी गलती या अनियमितता के कारण अपील, पुष्टीकरण या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तब तक न तो उलटा जाएगा और न परिवर्तित किया जाएगा जब तक न्यायालय की यह राय नहीं है कि उसके कारण वस्तुतः न्याय नहीं हो पाया है।"

इसलिए, यदि, अनुसन्धान के दौरान आज्ञापक प्रावधानों की अवहेलना के उपरांत दूषित पुलिस रिपोर्ट के आधार पर वास्तव में प्रसंज्ञान लिया भी जाता है, तब भी इस बात में संदेह नहीं है की परिणामस्वरूप किये गए विचारण को इस आधार पर अपास्त नहीं किया जा सकता जब तक की अनुसन्धान की अनियमितता के आधार पर न्याय का हनन होना प्रकट न हो जावे। यह कि अनुसन्धान के दौरान हुई अनियमितता न्यायालय की विचारण क्षमता को प्रभावित नहीं करती है यह एक स्थापित स्तिथि है जैसा कि *प्रभु बनाम एम्परर* ए आई आर (1944) पी. सी. 73 (सी) और *लुम्बरदार जुत्शी बनाम द किंग,* ए आई आर (1950)पीसी 26 (डी) मामलों से प्रतीत होता है।

आगे अभिनिर्धारित किया :

> **" हमारी राय में, इसलिए, जब इस तरह के उल्लंघन को मुकदमे के शुरुआती चरण में न्यायालय के संज्ञान में लाया जाता है, तो अदालत को उल्लंघन की प्रकृति और सीमा पर विचार करने के पश्चात प्रकरण की परिस्थितियों के संदर्भ में,पूर्ण या आंशिक रूप से अनुसन्धान के सम्बन्ध में ऐसा समुचित आदेश जिसे वह उचित समझता है अधिनियम की धारा 5-ए के तहत पारित कर सकता है। उपरोक्त विचारों**

के प्रकाश में अधिनियम की धारा 5 (4) के उल्लंघन अथवा वैधता की आपत्ति को निस्तारित किया जाना चाहिए।"

भजनलाल **प्रकरण में, तथ्यों के अनुसार इस न्यायालय ने पाया था कि एस.पी. ने बड़ी यांत्रिक एवं अनौपचारिक रीति से विधि के स्थापित सिद्धांतो की अवहेलना करते हुए आदेश पारित किया था। अधिनियम की धारा 17 के प्रावधानों का पालन नहीं किया गया था। जैसा कि पहले देखा गया था कि एस.पी. ने एस.एच.ओ. को जांच के लिए अधिकृत करते हुए केवल यह इंद्राज किया था "कृपया पंजीकरण करें और मामला जाँचे"। प्रतीत होता है कि एस.पी. को आरोपों या अपराधों की प्रकृति एवं एक निरीक्षक द्वारा जाँच के कार्य की महत्ता का ध्यान नहीं था। इस तथ्य से कोई इनकार नहीं है कि इन अपीलों में उत्तरदाताओं के खिलाफ दर्ज प्रकरणों में, एस. पी. के द्वारा अधिकृत किये बगैर भी अनुसन्धान अधिकारी विधिअनुसार अधिनियम की उप-धारा (1)(ई) के तहत वर्णित अपराध को छोड़कर अधिनियम की धारा 13 के तहत आने वाले अपराध की जांच हेतु अधिकृत था। हस्तगत अपीलों यह प्रकट होता है कि प्राथमिकी दर्ज होने के उपरांत पुलिस अधीक्षक, प्रत्यार्थीयों के खिलाफ लगाए आक्षेपों, उनके विरुद्ध पूर्व में दर्ज प्राथमिकियों एवं लंबित कार्यवाहियों के प्रति जागरूक और सचेत था। राम सिंह के मामले में एस.पी. द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.12.1994 जो कि 1992 में दर्ज अपराध के संबंध में था निम्न आशय का था:**

" भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 17 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए मैं पी. के. रनवाल, पुलिस अधीक्षक, विशेष पुलिस प्रतिष्ठान, डिवीजन-I, लोकायुक्त कार्यालय, ग्वालियर डिवीजन (एम. पी.); श्री डी. एस. राणा निरीक्षक एन. एस. पी.- (एस. पी. ई.) एल. ए. के.-जी. डब्ल्यू. एल. (एम. पी.) को श्री राम सिंह-डी. ओ. एक्साइज बटुल (एम. पी.) के खिलाफ दर्ज प्रकरण 103/92 अंतर्गत धारा 13(1)(ई), 23(2) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत की जांच हेतु अधिकृत करता हू।"

अन्य दो मामलों में भी इसी तरह के आदेश पारित किए गए हैं। निरीक्षक को जांच सौंपने के कारणों का पता आदेश से ही लगाया जा सकता है। अपीलकर्ता-राज्य, इसलिए, यह बताने में सफल रहा है कि भजन लाल के मामले के तथ्य इस प्रकरण से भिन्न थे क्योंकि हस्तगत मामले में पुलिस अधीक्षक ने अपने मस्तिष्क का उपयोग करने के पश्चात, मामले की परिस्थिति के अनुरूप, एक निरीक्षक को अनुसन्धान हेतु अधिकृत करने का आदेश पारित किया था। जाँच सौंपने का कारण स्पष्ट था। उच्च न्यायालय को अधिनियम के प्रावधानों का उदारतापूर्वक निर्वचन अभियुक्त के पक्ष में नहीं करना चाहिए था, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्यार्थियों के खिलाफ, लोक सेवकों के अवैध और भ्रष्ट कृत्यों पर अंकुश

लगाने हेतु अधिनियमित विधि के अंतर्गत गंभीर अपराध कारित करने के आरोपों का विचारण ही समाप्त हो गया था। यह हमारे ध्यान में लाया गया है कि समान परिस्थितियों के तहत उच्च न्यायालय ने श्री राम बाबू गुप्ता के खिलाफ दर्ज एक मामले में जांच और कार्रवाई को भी रद्द कर दिया था जिसके कि विरुद्ध आपराधिक अपील सं. 1754/1986 में इस न्यायालय ने 27 सितंबर, 1986 उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करके निचली अदालत को मामले में विधि अनुसार,टिप्पणियों के आलोक में, अग्रिम कार्यवाही करने के निर्देश दिए थे।

हम उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष से संतुष्ट नहीं हैं कि केवल पुलिस अधीक्षक का आदेश टाइप किए गए प्रोफार्मा में होने से, मस्तिष्क का प्रयोग न होने अथवा था यांत्रिक और आकस्मिक रीति से पारित होने का निष्कर्ष निकला जा सकता हो। जैसा कि पूर्व में देखा गया है कि आदेश में स्पष्ट रूप से आरोपी का नाम, प्राथमिकी की संख्या, अपराध की प्रकृति और पुलिस अधीक्षक की शक्ति जो उसे एक कनिष्ठ अधिकारी को जांच के लिए अधिकृत करने की अनुमति देना को इंगित किया गया है। एफ. आई. आर. के पंजीकरण तथा धारा 17 के दूसरे परंतुक के अंतर्गत प्राधिकृत करने का आदेश पारित करने के मध्य की अवधि भी पुलिस अधीक्षक द्वारा मस्तिष्क के प्रयोग के साथ-साथ ऐसी परिस्थितियों को दर्शाती है जिनपर विचार करते हुए अनुसन्धान अधिकृत किया गया था।

इन परिस्थितियों में समस्त अपील स्वीकार की जाकर उच्च न्यायालय के आलोच्य निर्णय, जिनके द्वारा धारा 17 की व्याख्या करते हुए अनुसन्धान प्राधिकृत अधिकारी द्वारा सम्पादित न होने का निष्कर्ष निकाला गया था, विधि अनुसार संवहनीय ना होने से अपास्त कर, विचारण न्यायालय को प्रकरण में नियमानुसार अग्रिम विचारण हेतु निर्देशित किया जाता है। प्रत्यार्थियों को यह अनुमति दी जाती है कि वे विधि एवं तथ्यों के अनुसार उपलब्ध ऐसे समस्त बचाव, जिनके की सम्बन्ध में इस न्यायालय एवं उच्च न्यायालय द्वारा उनके विरुद्ध विनिश्चय नहीं किया गया है, को अपने प्रकरण के विचारण में उठाने हेतु स्वतंत्र रहेंगे।

अपील स्वीकार की गयी।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी मोहित शर्मा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।